चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक प
1ST AUG.
6
as

एक समय एक गाँव में सीनू नाम का एक लड़का रहता था। वह बड़ा ग़रीब था और देखने में भी खुबसूरत न था। फिर उसका मुँह कौन देखता? लेकिन उसमें एक गुण था। जब वह गाता तो उसके गले से अमृत की धारा बहने लगती। उसके पास एक सितार था। वही उसकी सारी जायदाद था। जब सीनू वह सितार बजाते हुए गाने लगता तो मोर, हिरन, साँप आदि सभी पशु-पक्षी उसका गाना सुनने आते ।

लेकिन सीनू रुपया-पैसा या नाम कमाने के लिए नहीं गाता था। वह अपनी मौज में अपने

मन के तराने गाया करता था। उसका सितार हमेशा उसके साथ रहता था। इसलिए उसका नाम ही 'सितार-वाला सीनू" पड़ गया ।

लोग जब कभी सीनू का गाना सुनते तो उन पर जादू-सा चढ जाता और वे पत्थर की तरह वेसे ही खड़े रह जाते ! जब आख़िर सीनू गाना बन्द कर देता तो वे उसके पैरों पड़ कर गिड़गिड़ाने लगते ।

लेकिन सीनू को यमुना के किनारे अकेले बैठकर गाने में जितना आनन्द आता था उतना आनन्द और कहीं न आता था। यमुना की नीली लहरें देख कर वह मन्त्र-मुग्ध सा रह जाता। कभी-कभी वह सोचता कि इस यमुना से बढ़ कर सुन्दरी इन चौदहों भुवन में नहीं है।

एक दिन सीनू इसी तरह यमुना की शोभा देख कर आनन्दित होकर गा रहा था कि अचानक मँझधार के जल में एक भँवर पैदा हो गया और बड़े वेग से चक्कर खाने लगा। सीनू ने उसकी तरफ़ गौर से देखा तो उसे उस भँवर के बीच से एक मुकुट वाला सिर बाहर निकलता. दिखाई दिया। धीरे-धीरे एक देवता उठ कर बाहर आ खड़े हो गए। लहरें उनको देखते ही भय से

कृष्णदत्त

लोट-पोट कर अलग हो गईं और इस तरह उनके बाहर आने के ठिए एक साफ़ सुथरी राह बन गई।

उस देवता ने सीनू के पास आकर कहा-"बेटा ! मैं वरुण हूँ। संसार मैं जितनी भी नदियाँ हैं, सब मेरी बेटियाँ हैं। मुझे तुम्हारा गाना सुन कर बहुत खुशी हुई।इसलिए तुम्हें कुछ-न-कुछ इनाम देना चाहता हूँ । तुम कल एक जाल लाकर यमुना में फेंको। तुम्हें जो मिले वहीं मेरा इनाम समझो । लेकिन एक बात याद रखो ! ईनाम पाने के कुछ दिन बाद तुम्हे मेरे पाताल-राज में आकर वहाँ मणि-भवन में कुछ दिन रहना होगा और अपने अलौकिक गान से हमें आनन्दित करना होगा।" यह कह कर वरुण-देवता अदृश्य हो गए। उनके जाते ही फिर लहरें यथा-प्रकार उठने लगीं और नदी पहले की ही तरह बहने लगी ।

दूसरे दिन सीनू ने एक जाल लाकर नदी में फेंका । उसने जब जाल बाहर निकाला तो उसमें एक सन्दूक मिला। उसने जब वह सन्दूक खोल कर देखा तो उसे उसमें अनगिनत हीरे-जवाहरात मिले। सीनू उन्हें घर ले गया और बेच-बाच कर उस रुपए से व्यापार

करने ढगा। कुछ ही दिनों में वह करोड़पति बन गया। अब उसका नाम सारे संसार में मशहूर हो गया।

इस तरह सीनू जब अचानक धनवान बन गया तो सब लोग उसके पास जाने लगे और उसकी ख़ुशामद करने लगे। लेकिन इसमे सीनू में कोई परिवर्तन न आया। वह पहले की तरह ही यमुना किनारे बैठ कर सितार बजाते हुए अपने मन के राग आलापता। इतना ही नहीं; वह देश-विदेश से अनेक दुर्भभ रत्न और तरह तरह के उपहार मँगा कर प्रेम से सुन्दरी यमुना की भेंट किया करता।
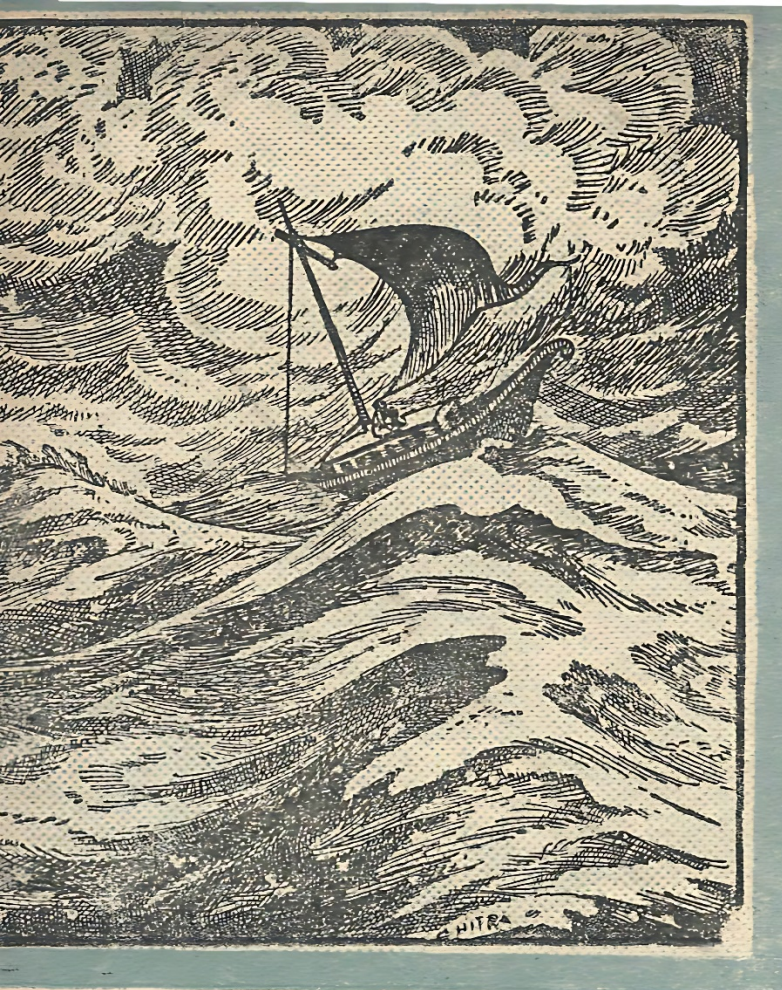
इस तरह बारह साल बीत गए। एक बार सीनू को किसी काम से एक जहाज के द्वारा विदेश की यात्रा करनी पड़ी। वह जहाज एक बड़े सौदागर का था। सीनू उसे कुछ रुपए देकर जहाज पर चढ़ा। सफ़र बहुत दूर का था। राह में बहुत दिन लग गए । सीनू का सितार तो उसके साथ था ही। बस, वह रोज जहाज पर बैठ कर सितार बजाते हुए कुछ-न-कुछ गाता रहता था। वह न तो किसी से बोलता-चालता और न किसी से मिलता-जुलता । इसढिए जहाज के सब लोगों को उससे बहुत ही चिढ़ पैदा हो गई। इस तरह जब जहाज बीच समुन्दर में पहुँचा तो एक दिन बड़ा भारी तूफ़ान उठा। जहाज भयानक लहरों पर डगमग-डगमग डोलने लगा। जहाज के खलासी, यात्री सभी घबरा गए । किसी की जान में जान न थी । लेकिन सीनू निश्चल होकर अपनी जगह पर बैठा-बैठा गा रहा था। तब जहाज के कप्तान ने जहाज पर के सब लोगों को एक जगह जमा करके कहा--"भाइयों ! इस जहाज पर हमीं लोगों में कोई एक ऐसा व्यक्ति है जिसने वचन देकर उसका पालन नहीं किया है। उसी के अपराध से हमारा जहाज डूबने जा रहा है। नहीं तो वरुण-देवता को इतना क्रोध न आता। जब तक वह दोषी व्यक्ति अपने अपराध का दण्ड नहीं भोगेगा तब तक यह तूफ़ान शान्त न होगा । इसलिए अच्छा हो कि वह स्वयं आगे आकर अपना अपराध स्वीकार कर ले। नहीं तो हम सब की हत्या का पाप भी उसी के मत्थे लगेगा ।"

जब सीनू ने कप्तान की ये बातें सुनी तो उसे वरुण-देवता से भेंट की बाद याद आ गई। उसने झट जान लिया कि उसी के अपराध के कारण जहाज डूबने जा रहा है। तुरन्त उसने आगे आकर कहा--"मैं ही वह पापी हूँ। मैंने ही वरुण देवता को वचन देकर उसे पूरा

नहीं किया है। लेकिन मैं अपने अपराध का दण्ड भोगने को तैयार हूँ।" यह कह कर बह अपना सितार हाथ में लिए जहाज पर से तूफ़ानी समुन्दर के अथाह जल में कूद पड़ा।

देखते ही देखते सीनू को लहरों ने निगल लिया। वह समुद्र के अथाह जल में तले की ओर जाने ढगा। राह में उसे अनेक प्रकार के जलचर जीव-जन्तु दिखाई पड़े।उन सबको देख कर अचरज करतें हुए थोड़ी देर में सीनू तले से जा लगा और सीधे वरुण-देवता के मन्दिर में जा पहुँचा । बैसा मन्दिर सीनू ने कभी स्वप्न में भी न देखा था। अनेक रङ्ग - बिरङ्गे मणियों से बने हुए उस भवन को देख कर वह अवाक रह गया। इतने में वरुण-देवता ने उसे देख छिया और बड़े आनन्द से अगवानी करते हुए कहा--"क्यों बेटा ! तुमने बिलकुल मेरी बात ही भुला दी। जानते हो, तुम्हारी राह देखते हुए मैंने ये बारह बरस कितनी मुश्किल से काटे हैं ? क्या तुम अपना वादा बिल्कुल भूल गए थे ?"

तब सीनू ने लाज से सिर झुका कर कहा--" देव! क्षमा कीजिए। मैंने अपने आनन्द में आपकी बात दी
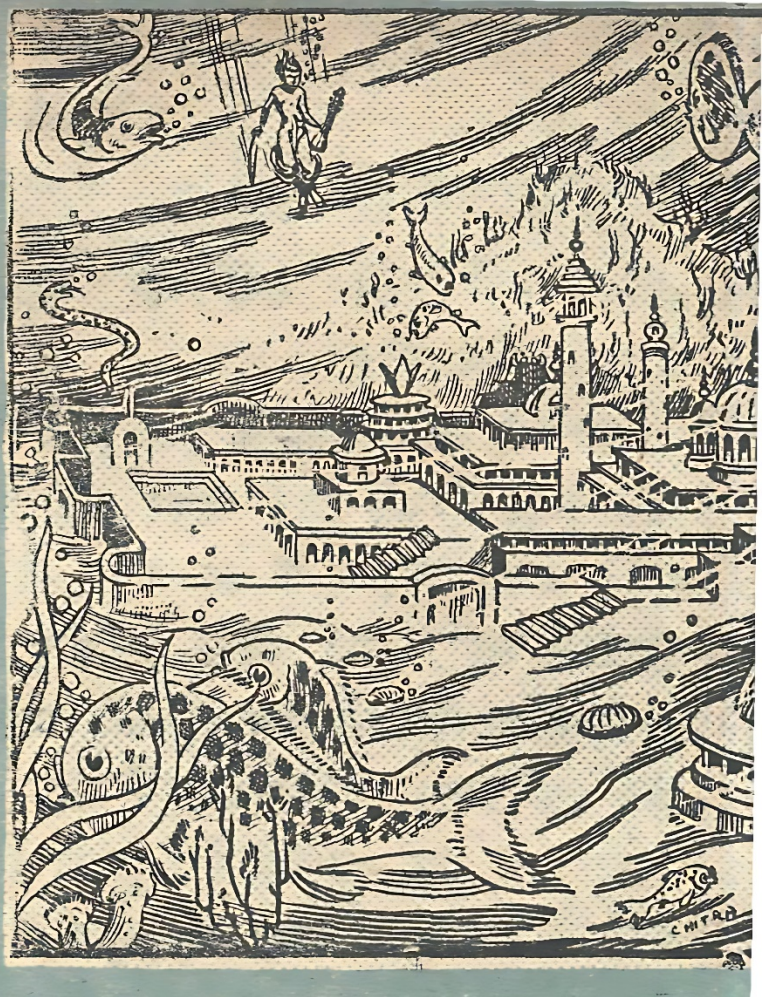
भुला दी थी ! " तब वरुण-देवता ने बड़े प्रेम से उसके कन्धे पर हाथ रख कर दिलासा देते हुए कहा--"अच्छा! अब भी कोई हर्ज नहीं । जल्दी तुम अपना सितार निकाल कर अपने गान से अमृत बरसाओ।"

तब सीनू ने अपना सितार निकाला और गाना शुरू कर दिया। तुरन्त समुद्र के गर्भ में खलबली मचने लगी। तरह-तरह के जलचर, अनेकों मछलियाँ, साँप और बहुत-से जीव वहाँ आ खड़े हो गए और सीनू का गाना सुनने छगे। वरुण-देवता भी अपने सिंहासन से उठ कर मस्ती से झूमते हुए नृत्य करने लगे। उनके नृत्य से जल की सतह पर फिर

तूफ़ानी लहरें उठने लगी और जहाज डाँवाँ -डोल होने लगे।

इतने में वरुण-देवता के अन्तःपुर में से तीस सुन्दर कन्याएँ बाहर आकर खड़ी हो गईं । उनकी - सुन्दरता से वह सारा प्रदेश जगमगाने लगा। उन्हें देखते ही सीनू ने गाना बन्द कर दिया और पागल की तरह उनकी तरफ देखने लगा। तब वरुण-देवता ने कहा- “बेटा ! ये तीसों लड़कियाँ मेरी पुत्रियाँ हैं । इनमें से किसी का ब्याह नहीं हुआ है। तुम इनमें से जिसे चाहो चुन लो। मैं बड़ी खुशी से उससे तुम्हारा ब्याह करके तुम्हे अपना दामाद बना लूँगा।” तब सीनू ने उनकी तरफ़ देखा तो उसे तीसवीं लड़की सब से ज्यादा पसन्द आई। क्योंकि वह देखने में यमुना से मिलती-जुलती थी ! उस का रङ्ग भी यमुना की तरह ही गहरा नीला था। उसने उसे चुन लिया और कहा-“ऐसी सुदरी तो सारे संसार में हूँढने पर भी कहीं नहीं मिल सकती ।” यह सुन कर वह लड़की हँस दी। सीनू को ऐसा मालूम हुआ, मानो यमुना कल कल नाद करके बहती हुई जा रही हो।

थोड़ी देर बाद उसने और भी गौर से देखा तो मालूम हुआ कि उसने देश-विदेश से मँगवा कर जो अमूल्य मणियाँ और रत्न यमुना की मेंट किए थे, वे सब उस लड़की के अङ्गों पर शोभा दे रहे थे। उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ । तब वरुण-देव ने मुसकुराते हुए उस कन्या का हाथ सीनू के हाथ में घर कर कहा-' तुम इतने दिनों से जिसे अपना मधुर गायन सुना रहे थे यही वह यमुना है। तुमने जो जो मेंटें चढ़ाई थीं वे सब उसने पा लीं । इसलिए अब उचित है कि तुम दोनों विवाह करके सुख से रहो।” यह कह कर उन्होंने उन दोनों का विवाह बड़ी धूम-धाम से कर दिया और अपना आशीर्वाद दिया ।
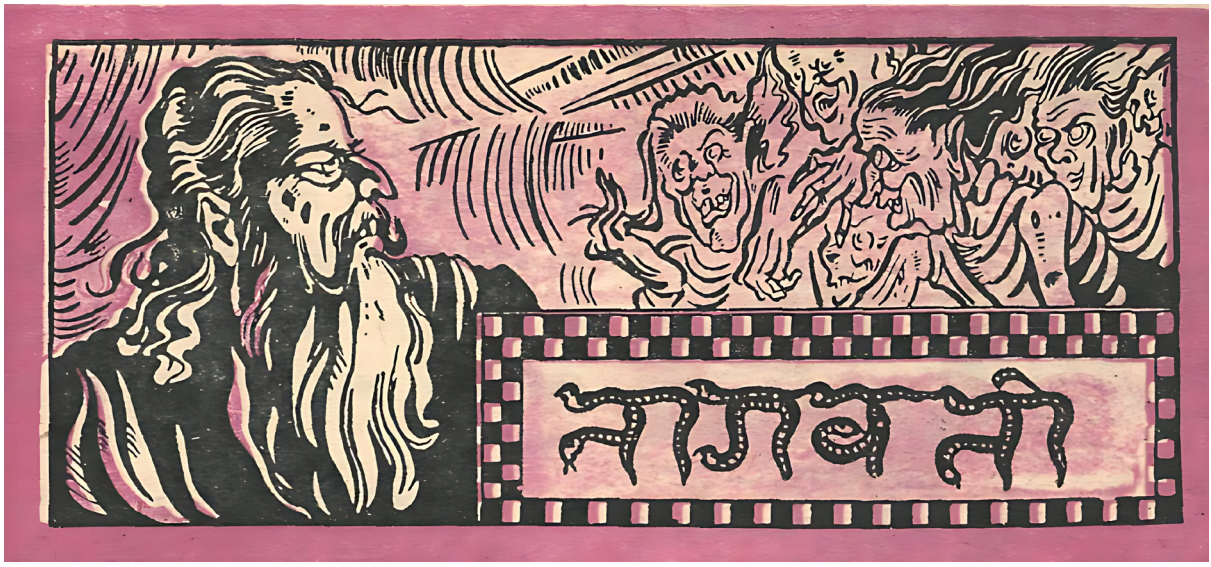
श्रीनगर से रवाना होकर जङ्गलों-पहाड़ों को पार करते हुए बालचन्द्र दिन भर चलता रहा। पच्चीस-तीस कोस चलने पर भी कहीं कोई गाँव न दिखाई दिया। इतने में अँधेरा हो गया। तब उसने कलेवे की पोटली खोल कर खा-पी लिया और एक बरगद के पेड़ के नीचे कम्बल बिछा कर लेट गया। जब सबेरा हुआ तो बालचन्द्र ने अपने सामने एक बारह फन-वाले सर्पराज को देखा। उसने तुरन्त तलवार उठाई। क्योंकि उसने समझा कि वह उसी को डसने के लिए आ रहा है।

ढेकिन साँप ने उसे रोक कर कहा- "हे बालचन्द्र ! तुम्हारी माँ मेरे ही वर के प्रसाद से पैदा हुई। इस नाते तुम मेरे पोते हो। मैं तुम्हें आर्शर्वाद देने आया हूँ। जाओ, तुम ज़रूर अपनी, माँ का उद्धार करोगे। तुम्हारे हाथों फकीर का संहार होगा। लेकिन होशियार ! नगवाडीह के पास फकीर ने एक राक्षसी को पहरा देने के लिए रखा है। वह कपट-वेष में तुम्हें घोखा देने आएगी । देखना, कहीं उसके फन्दे में न फँस जाना।"

यह सुन कर बालचन्द्र ने बड़ी नम्रता से सर्पराज को प्रणाम किया और वहाँ से चल दिया। इस तरह दिन भर चल कर वह शाम को बाघ-नगर में एक भठियारिन के घर पहुँचा। भटियारिन ने उसका मुरझाया हुआ चेहरा देख कर तुरन्त चूल्हा जलाया और रसोई बनाना शुरू कर दिया।

बालचन्द्र ने पूछा- "नानी, गाँव का हालचाल तो बताओ !"

"क्या बताऊँ बेटा ! हमें मीठा पानी पिए हुए छः महीने हो गए।" उसने कहा।

"ऐसा क्यों, नानी ?"

"क्या करें बेटा ! खारा पानी पीते हैं ! रसोई भी उसी से बनाते हैं। दाल तो पकती ही नहीं ।"

"क्या इस गँव में मीठे पानी के कुएँ नहीं हैं !"

"कुएँ तो हैं बेटा ! लेकिन क्या फ़ायदा ? यह बाघ जो हमारे पीछे पड़ गया है।"

"अच्छा, तो यह बाघ कहाँ से आ गया?"

"तो क्या तुम जानते ही नहीं ? हमारे गाँव के उत्तर में मीठे पानी का एक बहुत बड़ा कुआँ है। एक बड़ा बाघ न जाने कहाँ से आ गया और वहाँ जम कर बैठ गया। छः महीने से वह किसी को उस ओर ताकने भी नहीं देता। जो जाता है उसको हड़प जाता है। कोई भी उसे नहीं मार सका ।"

"तो तुम्हारे राजा क्या कर रहे हैं ?"

"वे क्या करेंगे बेचारे ? उन्होने ढिँढोरा पिटवा दिया है कि जो कोई उस बाघ को मारेगा उसे अपनी बेटी ब्याह दूँगा। उन्होंने तख्तों पर यही लिखवा कर सभी बाजारों में टँगवा दिया है। लेकिन उस बाघ को मारे कौन !"

थोड़ी देर मैं बालचन्द्र खा-पीकर सो गया। दूसरे दिन उसने तड़के ही उठ कर नहा-घोकर कलेवा किया और शहर के उत्तर की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर उसने देखा तो फाटक बन्द था और ताला लगा हुआ था। लेकिन पहरेदार वहीं थे। "अरे भई, कौन है यहाँ ? जरा फाटक तो खोलो ! मुझे बाहर जाना है।" बालचन्द्र ने कहा।

"यह फाटक नहीं खुलेगा। तुम पूरबी दरवाजे से जाओ।" पहरेदारों ने कहा ।

"नहीं, मुझे इसी दरवाजे से जाना है।"

"क्यों नाहक अपनी जान गँवाते हो? यहीं नजदीक में एक कुँआ है। वहाँ एक बाघ रहता है। उससे कोई नहीं बच सकता।" पहरेदारों ने कहा।

"अच्छा, जरा मैं भी एक बार देख लूँ कि वह कैसा बाघ है। दरवाजा खोलो।" बालचन्द्र ने कहा।

तब पहरेदारों ने दरवाजा खोल कर बालचन्द्र को बाहर जाने दिया और तुरन्त फिर बन्द कर छिया। बालचन्द्र बाघ को ढूँढ़ते हुए उस कुएँ पर पहुँचा। बाघ उसे देखते ही गरज कर टूट पड़ा। लेकिन बालचन्द्र ने उससे पहले ही तलवार का एक ऐसा वार किया कि बाघ लोट-पोट कर ठण्डा हो गया। तब उसने उसके पञ्जे और उसकी पूँछ का सिरा काट लिया और फिर पूरबी दरवाजे से होकर भठियारिन के घर लौट आया।

"कहाँ घूम आए हो बेटा ?" भठियारिन ने पूछा।

"शहर देखने गया था। कैसा सुन्दर शहर है ! मैं और कुछ दिन यहीं रहूँगा।" बालचन्द्र ने कहा।

उसी शहर में कलुआ नाम का एक धोबी रहता था। वह बड़ा आलसी और

कामचोर था। कभी कपड़े धोने नहीं जाता था। तिस पर शराब पीकर हमेशा नशे में चूर रहता था। उस दिन भी वह रोज़ की तरह खूब पीकर होश-हवास खो बैठा और भटकते हुए उस कुँए के पास जा पहुँचा। वहाँ उसे मरा हुआ बाघ दिखाई दिया । नशे में होने के कारण उस धोबी को डर भी नहीं लगा। उसने लाठी उठा कर उस बाघ पर तीन चार हाथ जमा दिए। बाघ न हिला,न डुला । धोबी ने आँखें मल-मल कर देखा तो मालूम हुआ कि बाघ मरा है। उसने एक लात जमाई । ढेफिन मरा हुआ बाघ कैसे हिलता ? अब धोबी को निश्चय हो गया कि उसी के वारों से बाघ ठण्डा पड़ गया है। तब वह खुशी से उछल पड़ा। उसने सोचा- “वाह ! वाह ! मैं अब राजकुमारी से ब्याह करूँगा और राजा का दामाद बनुँगा। बड़े-बड़े लोग आकर मेरे सामने सर झुकाएँगे और सलाम करेंगे।" यह सोच कर वह तुरन्त राज-महल की ओर दौड़ा।

राह में उसे देख कर सब छोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे। कुछ लोगो ने उसे रोक कर पूछा- “अरे! बात क्या है? क्यों इस तरह दौड़ रहा है?” लेकिन उन सब को धक्का देकर वह राज-महल में पहुँचा।

"हुजूर! मैंने वाघ को मार डाला है। अगर आप चाहें तो कुँए के पास जाकर उसकी लाश देख सकते हैं। अब आप जल्दी राजकुमारी से मेरा ब्याह कर दें !” उसने राजा के पास जाकर कहा।

राजा, मन्त्री बगैरह सभी को उसकी बातें सुन कर काठ मार गया। वे कैसे सोच सकते थे कि यह पियकड़ उस बाघ को मार डलेगा ? अब राजकुमारी को इस धोबी के गले कैसे बाँधा जाए ! नहीं तो फिर वादा जो तोड़ना पड़ेगा !

दरवारियों ने जाकर देखा तो बाघ सचमुच मरा पड़ा था। आख़िर लाचार होकर राजा ने घोषित करवा दिया कि "कलुआ धोबी ने बाघ को मार डाला है । इसलिए राजकुमारी सुभद्रा से उसका व्याह होगा।"

राज-महल में किसी के मुख पर कोई रौनक़ न थी। सारी ख़ुशी तो कलुआ धोबी की थी। इस जोश में उसने अपनी धोबिन को खूब मारा-पीटा और बिरादरी-वालों को बुला कर खूब ताड़ी पिलाई। रात भर उसने अपने घर में जलसा मनाया।
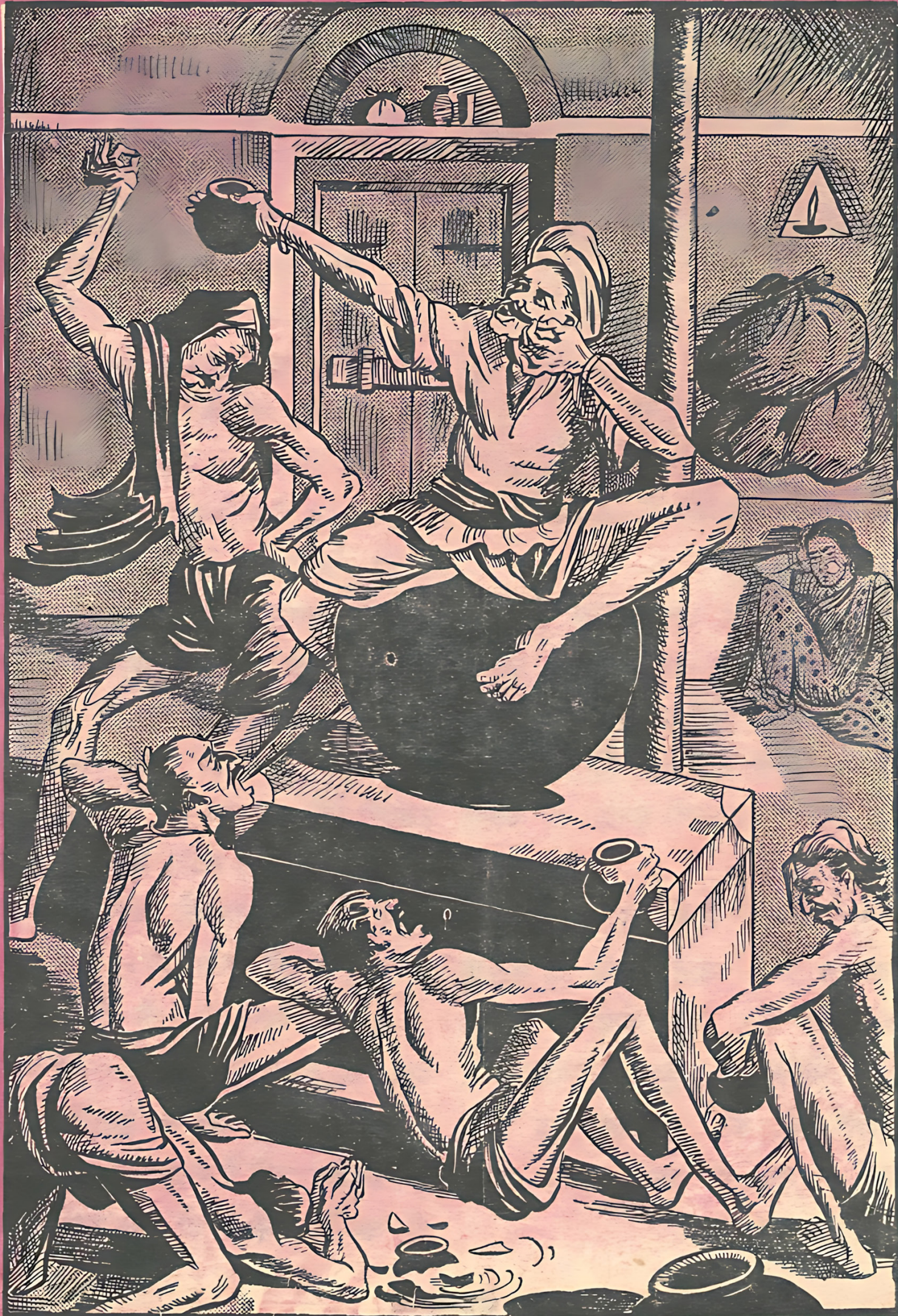
इधर भटियारिन के घर में थका-माँदा राजकुमार खा-पीकर तुरन्त सो गया । इतने में भटियारिन ने ढिँढोरा सुना कि कलुआ धोबी ने बाघ को मार डाला है। यह सुनते ही उसे शक हो गया कि हो न हो, राजकुमार का भी इसमें कुछ हाथ है। उसने चुपके से तलवार निकाल कर देखी। वह खून से सनी हुई थी। इतने में बाघ के पञ्जों की पोटली पर उसकी नज़र पड़ी। उसका शक ठीक निकला । तुरन्त भठियारिन वे पञ्जे और पूँछ का सिरा लेकर राजा के पास गई और उससे खुलासा हाल कह दिया। राजा को सारा हाल मालूम हो गया।

दूसरे दिन तड़के ही राजा ने सिपाहियों को भेज कर धोबी को पकड़ मँगाया और हथकड़ी-बेड़ी लगा कर जेल में डाल दिया। राजा अपने परिवार सहित भठियारिन के घर आया और राजकमार को अपने साथ महल में ले जाकर खूब ख़ातिर की।

सुभद्रा के साथ ब्याह की तैयारियाँ होते देख कर राजकुवार ने कहा-"मैं अपनी माँ को फकीर की कैद से छुड़ाने जा रहा हूँ। इसलिए अभी मैं ब्याह नहीं कर सकता । हाँ, जब मैं अपनी माँ को साथ लेकर लौटूँगा

तो जरूर व्याह करके सुमद्रा को अपने साथ ले जाऊँगा।" राजा ने भी उसकी बात मान ली और नागशर्मा नामक एक ब्राह्मण को साथ देकर उसे बिदा किया।

वहाँ से गङ्गा-नगर पच्चीस कोस की दूरी पर था। दोनों उस तरफ़ रवाना हुए। दोपहर तक चलते रहने के बाद बालचन्द्र को जोर की प्यास लगी । तब नागशर्मा राजकुमार को एक कुँए के पास ले गया। कुआँ बहुत गहरा था। वहाँ पानी लेने के लिए कोई चीज़ न थी। तब बालचन्द्र ने अपने बस्त्र, गहने, हथियार सब उतार कर कुएँ की जगत पर रख दिए। फिर अपनी लम्बी पगड़ी का एक छोर पास के एक पेड़ से बाँधकर उसके सहारे वह कुँए में उतरा। इतने में क़ीमती गहने और हथियार वगैरह देख कर उस ब्राह्मण के मन में लालच पैदा हुआ और उसकी नीयत बिगड़ गई। उसने झट तलवार उठाई और पेड़ से बँधी हुई पगड़ी को खट से काट डाला।

बाठचन्द्र घड़ाम से कुएँ में जा गिरा। कुएँ की दीवारों पर काई जमी हुई थी। हाथ-पैर फिसल रहे थे। इसलिए

कोशिश करने पर भी उपर न आ सका। इघर ब्राह्मण गहने वौरह लेकर चम्पत हो गया। गङ्गा-नगर जाकर उसने सबको बेच-बाच दिया और मौज उड़ाने लगा। लेकिन थोड़े दिनों में उसके सब रुपए ख़तम हो गए और वह नगर के देवालय के इद-गिर्द भीख माँग कर पेट पालने ठगा। बालचन्द्र कुछ दिनों तक उस कुएँ में पड़ा रहा। उस घने जङ्गल के गहरे कुएँ में से उसकी पुकार कौन सुनता ? लेकिन संयोग से गङ्गा-नगर का राजा शिकार खेलते हुए पानी पीने को कुएँ पर आया। कुएँ में झाँकते ही आदमी को देख कर उसने तुरन्त रस्सी लटका दी।

रस्सी के सहारे बालचन्द्र ऊपर आ गया। उसने राजा को अपनी कहानी सुनाई।

ब्राह्मण की दुष्टता का सारा हाल-चाल सुन कर राजा को उस पर दया आ गई। उस राजा की भी एक खूबसूरत बेटी थी। बालचन्द्र का शील-स्वभाव देख कर राजा मुग्ध हो गया था। उसने मन में सोचा-"अगर यह लड़का मेरा दामाद हो जाए तो कितना अच्छा हो !" उसने यह इच्छा बालचन्द्र से कह दी।

बालचन्द्र ने कहा-' मेरा ब्रत है कि अपनी माँ को फकीर की कैद से छुड़ाए बिना किसी तरह का सुख न भोगूँगा । इसकिए जब मैं अपनी माँ को छुड़ा कर लौटूँगा, तब मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगा।" राजा ने बड़ी खुशी से उसकी बात मान ली।

दूसरे दिन स्रे राजा बालचन्द्र को अपने साथ नगर का देवालय दिखाने ले गया। वहाँ भीख माँगते हुए अपने साथी ब्राह्मण को देख कर बालचन्द्र ने कहा- "नमस्ते नागशर्मा जी!" ब्राह्मण मुँह बाए रह गया। उसके बदन पर काटो तो खून नहीं। लेकिन राजकुमार ने उस पर तरस खाकर उसके सारे अपराध भुला दिए। राजा से कह कर उसको बहुत सा धन भी दान में दिलवा दिया।

दूसरे दिन बालचन्द्र उस राजा से बिदा लेकर गङ्गा-नगर से चल पड़ा। दिन भर बह बिना कहीं अराम किए चलता रहा। तोता-नगर अभी चार कोस और दूर था। इतने में अन्घेरा हो गया। राजकुमार बहुत थक गया था। इसलिए वहीं एक टूटे-फूटे मन्दिर में लेटा रहा। पेट में चूहे दौड़ रहे थे। इसछिए उसे नींद न आई। आधी रात होते होते पहले एक सियार और उसके पीछे एक बाघ वहाँ आकर बैठ गए। फिर दोनों में बातचीत होने लगी। बालचन्द्र उन दोनों की बातें सुनने लगा।

[संशेष]

एक गाँव में एक लालाजी रहते थे। वे बड़े चालाक थे। उन्होंने अनेकों पाप करके सैंकड़ों लोगों से छल-कपट करके बहुत-सा घन कमाया था । लेकिन यह नहीं कि वे अपने पापों के बारे में जानते न हों । वे खूब जानते थे कि उन्होंने बहुत से पाप किए हैं और दान-धर्म न करने से उन्हें सीधे नरक जाना होगा। लेकिन दान-धर्म करने में रुपया -पैसा खर्च होता है। मन्दिर बनवाना, तालाब या कुएँ ख़ुदवाना, पेड़ लगवाना या ऐसे ही पुण्य-कार्य सभी पैसा खरचे बिना तो होते नहीं। लेकिन पैसा खरचने में तो लालाजी की जान ही चली जाती थी। वे सोचते-"मैंने इतने पाप करके यह सारा घन कमाया है क्या इसी तरह ख़र्च कर देने के लिए ?" इसलिए उन्होंने बिना पैसा खर्च किए मुफ्त में पुण्य कमाने का एक रास्ता ढूँढ निकाला। वे राह में पेड, पत्थर, मन्दिर, देवता, गौ-ब्राह्मण जो भी दिखाई देते सबको सैकड़ों प्रणाम करते । प्रणाम करते-करते कमर भी दुख जाती थी। लेकिन बिना पैसे के पुण्य जो मिलता था।

हाँ, तो एक दिन ऐसा हुआ कि सेठानी जी दूध के बरतन पर ढक्कन रखना भूल गई। इतने में एक बिल्ली ने आकर मजे से दूध लपलपाना शुरू कर दिया। सेठजी ने जब यह देखा तो वे गुस्सा न रोक सके । उन्होंने बगल से एक अढैया उठा छिया और तान कर ऐसा फेंका कि बिल्ली तड़पी भी नहीं । चारों खने चित्त हो गई।

लालाजी ने गुस्से में अढैया फेंक तो दिया था। पर उन्हें गुमान न था कि पत्थर उन पर पड़ेगा और बिल्ली मर जाएगी । अब अपने हाथों एक बिल्ली की हत्या देख कर उनके हाथ-पैर सूख गए। क्योंकि बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो था नहीं। न

निवारण राय

जाने, उन्हें कौन से नरक में जाना पड़ेगा ? तिस पर कहते हैं कि यह पाप करने वाला अगले जन्म में कोढ़ी होकर पैदा होता है। उन्होंने सोचा कि यह पाप तो ऐसा नहीं है जो मुफ्त के प्रणामों से पिण्ड छोड़ दे। यह सोच कर उन्होंने पुरोहित जी से सलाह करने को बुला भेजा। पुरोहित जी से उन्होंने इस तरह बात छेड़ी जैसे वाह और किसी की बात हो। “पण्डितजी ! बिल्ली की हृत्या तो बड़ा भारी पाप है न ?”

"बिल्ली को मारने से ब्रम्ह-हत्या का पाप लगता है।" पण्डितजी ने कहा।

"तो फिर इस पाप का प्रायश्चित्त क्या है?” लालाजी ने पूछा।

“जो बिल्ली मर गई है उसी के वजन की एक सोने की बिल्ली बनवा कर ब्राह्मण को दे देने से इस पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है ।” पण्डितजी ने जवाब दिया ।

यह सुनते ही लालाजी के सिर पर मानो पहाड़ ही टूट पड़ा। उन्होंने सम्हल कर कहा-"लेकिन पण्डितजी ! हर किसी मे सोने की बिल्ली दान करने की सामर्थ्य नहीं होती। ऐसे लोग कया करें !"

"ऐसे लोग चाँदी की बिल्ली दे सकते हैं।" पण्डितजी ने कहा।

"लेकिन जो छोग चाँदी की बिल्ली भी नहीं दे सकते ! क्या उन लोगों के ठिए कोई रास्ता ही नहीं है ?" लालाजी ने पूछा ।

"है क्यों नहीं ? शास्त्रों में तो यजमान की सामर्थ्य के अनुसार दान बताया गया है। ऐसे ठोग काँसे की या नहीं तो पीतल की ही बिल्ली दान कर सकते हैं।"

फिर भी लालाजी को सन्तोष न हुआ।" लेकिन जिन छोगों की उतनी भी हैसियत न हो ?” उन्होंने फिर पूछा।

"ऐसे लोगों को अन्नदान करने के सिवा कोई चारा नहीं है।” पण्डितजी ने कहा।

अन्नदान के माने एक आदमी की रसोई का सामान यानी चावल, दाल, नोन-मिर्च,

घी-दही वगैरह देना है । कुल मिला कर एकाध रुपए से काम चल जाएगा । बस, लालाजी को यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि बिल्ली की हत्या जैसा भारी प्राप सिर्फ एकाध रुपए के खर्च से उनके सिर से उतर जाता है। अब उन्होंने पण्तिजी से यह प्रगट कर दिया कि वे अब तक जिस पाप से छूटने के लिए सौदा कर रहे थे वास्तव में वह पाप उन्हीं ने किया था।

यह सुन कर पण्डितजी हके-बक्के रह गए । उन्होंने सोचा-"अरे ! इसने तो बड़ा अच्छा चकमा दिया ! यह तो आसानी से एक सोने की बिल्ली दे सकता है ।" लेकिन आख़िर यह सोच कर पण्डितजी ने सन्तोष कर लिया कि जमाना अच्छा नहीं है और दान-पुण्य में लोगों की श्रद्धा भी नहीं रह गई है। वे प्रायश्चित्त कराने को तैयार हो गए।

उनके चले जाने के बाद लालाजी ने फिर एक बार सोचा तो उनका मन आगा-पीछा करने लगा। उन्होंने सोचा-' पैसे क्या पेड़ों में फलते हैं ? एक बोरा आटा बेचना पडता है। तब कहीं आठ आने पैसे मिलते हैं । ऐसी पसीने की कमाई क्या फिजूल इस ब्राह्मण को दे दूँ ?" उन्होंने दिमाग लड़ाया कि बिना एक पाई भी खर्च किए पाप से कैसे छुटकारा मिल सकता है ! सोच-विचार करने के बाद

पण्डितजी के घर गए और जाकर फिर पूछा-"क्यों पण्डितजी ! क्या सचमुच आपको अन्नदान देने से मेरा पाप कट जाएगा ?"

"इसमें क्या शक है ! तुम्हारा दान ग्रहण करते ही तुम्हारा पाप भी मेरे ऊपर आ जाएगा। मैं स्वयं जप-तप करके उससे छुटकारा पा लूँगा।" उन्होंने कहा ।

"तब तो ठीक है। मैं अभी जरा काम से जा रहा हूँ। दान की बस्तुएँ मैं किसी के हाथ भिजवा दूँगा। आप तुरन्त जप शुरू कर दीजिए । यह कह कर लालाजी घर चले गए।

एक घण्टा बीत जाने के बाद लालाजी ने फिर आकर पूछा-"पण्डितजी ! क्या कर रहे हैं ?"

"मैं जप कर रहा हूँ।" - पण्डितजी ने तुरन्त जवाब दिया।

"मेरा किया हुआ पाप जो आपके सिर पर आ गया है उसी को काटने के लिए है न यह जप ?" लालाजी ने पूछा ।

पण्डितजी ने कहा-"हाँ !"

तब लालाजी ने बहुत खुश होकर पूछा-"क्या मेरा पाप आपके ऊपर आ गया है ?"

बेचारे पण्डितजी न समझ सके कि लाला ये सब सवाल क्यों कर रहे हैं ? उन्होंने सोचा- "नहीं कह देने से कहीं लालाजी दान देने से इन्कार न कर दें ।" इसलिए उन्होंने कहा "हाँ !"

"तो अब मैं चला । बिदा दीजिए !" यह कह कर लालाजी वहाँ से चले।

"तो मेरी दान-दक्षिणा कहाँ है?" पण्डितजी ने पूछा ।

"दान-दक्षिणा? क्या करूँ पण्डितजी! व्यापार में बड़ा घाटा पड़ गया है। फिर कभी दे दूँगा।"

"अरे लालाजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? पहले आपने कहा था कि अभी भिजवा दूँगा।" पण्डितजी ने घबरा कर कहा।

"मैंने पहले कहा तो था ! लेकिन क्या किया जाय लाचार हूँ। समझ लीजिए कि हत्या का पाप आपके सर और वादा झूठा करने का पाप मेरे सिर!" यह कह कर लालाजी चलते बने। राह में लालाजी ने सोचा-"बिल्ली की हत्या का पाप बहुत बड़ा है। लेकिन दान न देने का पाप बहुत छोटा है। दो तीन बार भगवान को प्रणाम कर लेने से यह पाप छूट जाएगा।" यह सोच कर उन्होंने राह में एक मन्दिर में ठाकुरजी को दस-पन्द्रह बार प्रणाम कर छिया और मन ही मन खुश होते चले गए कि आज उन्होंने मुफ्त में एक बड़े भारी पाप से छुटकारा पा लिया। लेकिन लालाजी ने यह न सोचा कि बिल्ली की हत्या के पाप के साथ ग़रीब ब्राह्मण को धोखा देने का पाप भी उनके गले पड़ गया है ।
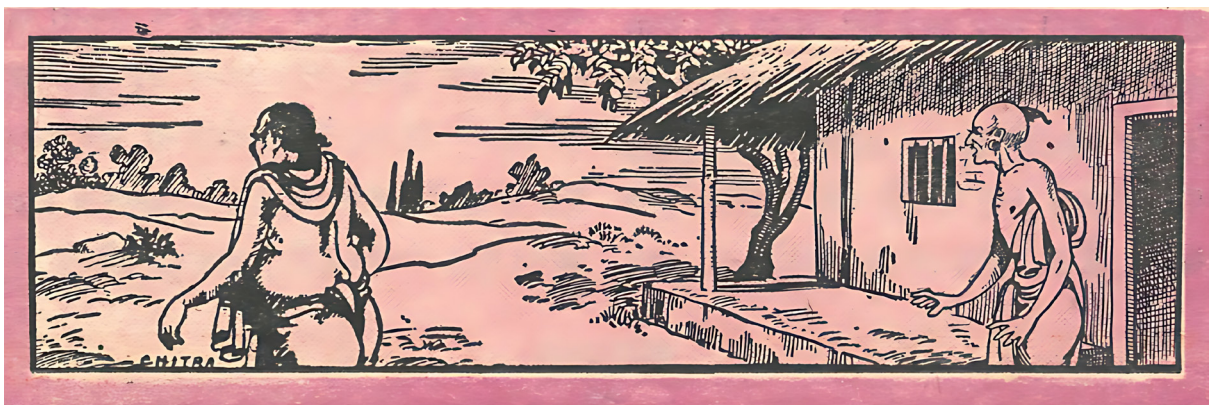
एफ समय की बात है। एक घने जङ्गल के बीच एक पहाड़ी गुफ़ा में बैठ कर एक महात्मा कठोर तप कर रहे थे। वे ऐसे तपस्वी थे जिनको अपनी तपस्या छोड़ कर और किसी बात का ध्यान न था। स्वार्थ का लेश भी न था उनमें। हर वक्त परमार्थ का ध्यान करते-करते उनका जीवन ही परमार्थमय हो गया था। जो कोई उनकी शरण में जाता उसे वे बड़े प्रेम से ज्ञानोपदेश देते और उसके सारे दुख दूर कर देते।

उस जङ्गल के आस-पास के सैकड़ों गाँवों के लोग उस महात्मा के पास हर-हमेशा आया जाया करते और अपना दुःख-सुख कहते थे। छोटे-छोटे बच्चों से लेकर बड़े बूढ़ों तक सभी महात्मा से प्रेम करते थे। महात्मा सभी को उचित उपदेश देकर, तृप्त करते रहते थे। इसलिए सबकी उस महात्मा पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी।

जिस पहाड़ पर वे रहा करते थे उसके नीचे महात्मा ने चार चिन्ह प्रतिष्ठित कर दिए थे। शंख, चक्र, गदा और पद्म यही वे चारों चिन्ह थे। इन चारों चिन्हों की महिमा हमेशा लोगों को बताया करते थे। उनका कहना था कि जब तक उन लोगों का आचरण शुद्ध रहेगा, तब तक ये चारों चिन्ह निर्मल तेज से जगमगाते रहेंगे । बच्चों से वे कहते-"बच्चो ! हमेशा अच्छे काम किया करो। विनय सीखो और हमेशा सच बोलो।"

जवानों से कहते- "किसी से द्वेष न करो। द्वेष से क्रूरता उत्पन्न होती है। इसलिए सबसे प्रेम करो !"

बूढ़ों से कहते-"भाइयों! भगवान की इच्छा है कि मनुष्य शान्ति से जीवन बित्ताए। इसलिए मनुष्य को दूसरों से झगड़ा न करना चाहिए। जिन्दगी के चार दिन सबसे हिल-मिल कर बिताने चाहिए।"

रमेशकुमार

उस महात्मा के उपदेशों के प्रभाव से वहाँ आस-पास के सभी गाँवों में परम शान्ति विराजने लगी। लोग सुख से जीवन बिताने लगे। यह नहीं कि गाँवों के सब लोग देवता बन गए थे और कमी कोई ग़लती ही नहीं करते थे। वे ग़लतियाँ करते तो थे। लेकिन उस महात्मा के उपदेश से उन्हें सुधार कर अपनी भूल जान जाते थे। इसके अलावा एक विशेषता यह थी कि जब वे लोग कोई गलती करते तो स्वयं महात्मा के पास आकर अपना अपराध स्वीकार कर लेते और पछताते हुए किए का दण्ड भी भोग लेते। इस तरह महात्मा के आस-पास के गाँवों के लोग अपना चाल-चलन दिन-दिन खूब सुधार रहे थे ।

एक दिन ऐसा हुआ कि एक लड़की शरम से सर झुकाए धीरे-धीरे क़दम धरती आँसू भरे आँखों से महात्मा के पास आकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर तक चुपचाप रहने के बाद उसने दीन-स्वर में कहा-"महात्मा ! मैंने आपके चारों चिन्हों में से चक्र को अपवित्र कर दिया है। मुझे क्षमा कीजिए ।"

"तुमने उसे कैसे अपवित्र किया ?" महात्मा ने मुसकुराते हुए पूछा।

"महात्मा! मेरे पड़ोस में एक लड़की रहती है। वह देखने में मुझसे भी सुन्दर है और मुझसे भी ज़्यादा कीमती गहने-कपड़े पहनती है। मुझे उस लड़की से डाह पैदा हो गया। इसलिए उस लड़की के बारे में मैंने झूठी-झूठी बातें फैला दीं। वे बातें सारे गाँव में फैल गई और लोग उन पर विश्वास भी करने लगे। इसलिए वह लड़की बेचारी इतनी दुखी हो गई है कि लोक-लाज के मारे घर से बाहर भी नहीं निकलती।" उस लड़की ने सारा हाल सच-सच कह दिया।

महात्मा ने उस लड़की की बातें गौर से सुनी और कहा-"हाय बेटी ! तुमने यह क्या किया? तुमने सिर्फ एक चक्र को ही नहीं; बाकी तीनों चिन्हों को भी अपवित्र कर दिया है।" यह कह कर वे उठे और उस छड़की को अपने साथ पहाड़ के नीचे लिवा ले गए जहाँ वे चारों चिन्ह थे। उन चारों चिन्हों को मलिन देख कर उस लड़की के शोक का ठिकाना न रहा। व्याकुल होकर बह महात्मा के पैरों पर गिर पड़ी।

“बेटी ! उठो ! तुम अभी घर जाओ ! कल सबेरे फिर मेरे पास आ जाना!” यह कह कर महात्मा ने उसे घर मेज दिया और खुद अपनी कुटिया में आ गए।

दूसरे दिन तड़के ही वह लड़की महात्मा के सामने हाथ बाँधे हाजिर हो गई। महात्मा की आज्ञा से आस-पस के गाँवों के सभी लोग वहाँ आकर जमा हो गए थे।

तब महात्मा ने उस लड़की को अपने साथ उन लोगों के पास ले जाकर उसके अपराध का सारा हाल उन्हें सुनाया। फिर उसने चिड़ियों के बहुत से पर निकाले और एक पर उस लड़की को देकर हवा

में उड़ा देने के लिए कहा। लड़की ने उस पर को ज्यों ही उड़ाया तो वह उड़ते-उड़ते आँखों से ओझल हो गया। उसी तरह महात्मा ने सभी पर लड़की के हाथों देकर एक-एक कर सभी उड़वा दिए। यों सभी पर न जाने कहाँ-कहाँ उड़ गए। एक भी कहीं नजदीक में न गिरा। सभी आँखों से ओझल हो गए।

उसके बाद महात्मा ने वहाँ जमा हुए छोगों से कहा-"तुम सभी जाकर इस लड़की के उड़ाए हुए पर ढूँढ लाओ। मैं एक-एक पर के लिए एक-एक रुपया ईनाम में दूँगा।"

सब लोग इनाम पाने के लालच से परों को ढूँढने चले गए। वे पहाड़ के नीचे जङ्गल से बहुत दूर तक ढूँढ़ते हुए गए। लेकिन दो-चार लोग ही ढूँढ कर कुछ पर ला सके। गिनने पर मालूम हुआ कि इतने लोगों के बीच कुछ चार को ही पर मिले हैं !

तब महात्मा ने वे चारों पर दोषी लड़की के हाथ में देकर कहा- "बेटी ! जाओ ! तुमने जिस लड़की के बारे में झूठी अफवाहें उड़ाई थीं, उसे ये पर ले जाकर दे दो और कहो कि 'मैंने जलन के मारे तुम्हारे चार अच्छे गुण चुरा लिए थे। मैं अब उन्हें लौटाने आई हूँ।' फिर वह लड़की जो कुछ कहे सो आकर मुझे बता देना !"

उस लड़की ने महात्मा के कहे अनुसार किया और उनके पास लौट कर कहा-"उसने कुछ नहीं कहा। सिर्फ़ वे पर लेकर हँसती हुई चुप हो गई।"

तब महात्मा ने कहा-"अच्छा ! अब जाकर फिर से चारों चिन्हों को देख तो आओ!" तब वह लड़की उन लोगों के साथ पहाड़ से उतर कर गई और देखा तो चारों चिन्ह अब पहले की तरह फिर तेज से जगमगा रहे थे। अब सब लोगों की समझ में आ गया कि महात्मा ने पहाड़ पर चिड़ियों के पर क्यों उड़वाए थे। उनका मतलब था कि झूठी अफवाहें फैलाना उतना ही आसान है जितना कि चिड़ियों के पर हवा में उड़ा देना । लेकिन उन अफवाहों का खण्डन करना उतना ही कठिन है जितना कि उड़े हुए परों को फिर से बटोर लाना। तब से उन लोगों में से किसी ने किसी पर झूठी अफवाहें नहीं उड़ाई।
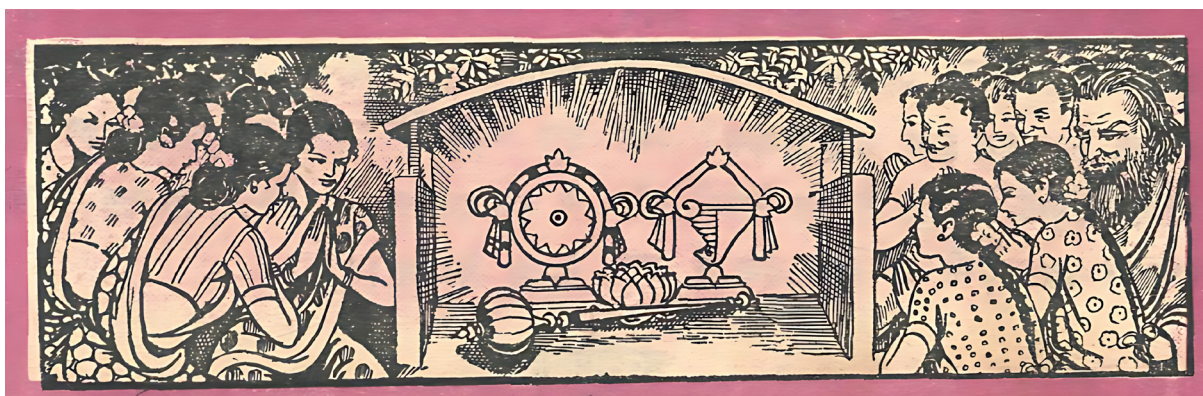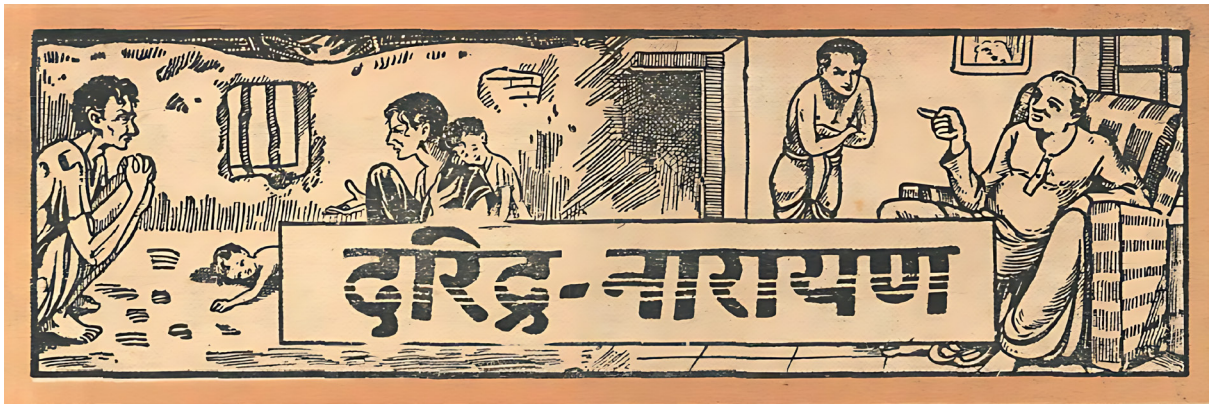
कहा जाता है कि किसी देश में दो भाई रहते थे। बड़ा भाई बड़ा कपटी और धूर्त था। लेकिन छोटा बिलकुछ गऊ जैसा सीधा और भोला-भाला था।

बड़ा भाई अपने छल-कपट से दोनों हाथों रुपया बटोर कर कुछ ही दिनों में बड़ा भारी धनवान बन गया। उसने अपने रहने के लिए एक सुन्दर महल बनवा लिया। अपनी पत्नी के ढिए नग-जड़े गहने बनाए। अच्छे अच्छे कीमती कपड़े सिलवाए। वह अपने बाल-बच्चों के साथ ऐशो-आराम की जिन्दगी बिताने लगा। धनी आदमी को दोस्तों की क्या कमी ! बहुत से लोग दिन-रात उसे घेरे रहने लगे। लक्ष्मी उसके घर में नाचने लगी। भट्टी की राख भी उसके छूने पर सोना बन जाती। जिस काम में वह हाथ डालता, उसी में उसको फायदा होता।

लेकिन छोटे भाई का हाल ठीक उल्टा था। उसकी फ़सल टिड्डियाँ चाट गई।महामारी से जानवर सब मर गए। सिर पर कर्ज का बोझ लद गया। उसका रुपया जिनके पास था, सब उसे हड़प गए। इस तरह उसके सिर पर विपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा। नौबत यहाँ तक पहुँची कि घर में कानी-कौड़ी भी न बची और बाल-बच्चे भूखों मरने लगे।

आख़िर उसकी पत्नी ने एक दिन उससे कहा-"आपके भाई राजा हैं। उनके पास जाकर अपनी कहानी कहिए। वे अपने छोटे भाई की जरूर कुछ-न-कुछ मदद करेंगे। सङ्कट में किसी-न-किसी के आगे हाथ पसारना ही पडता है। और वे तो आपके सगे भाई हैं।"

छोटे भाई को यह पसन्द न था। लेकिन स्त्री के बहुत तङ्ग करने पर

रामेश्वर गोयल
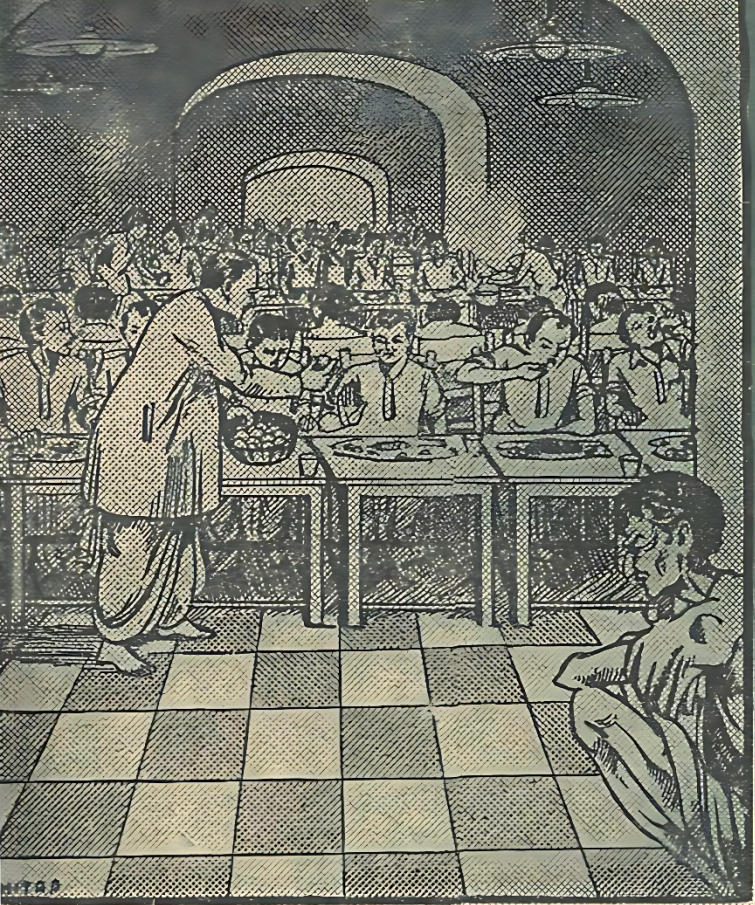
उसने सोचा-"अच्छा, चलूँ ! एक बार उन्हें देख तो आऊँ। कुछ-न-कुछ मदद करेंगे ही।" यह सोच कर उसने बड़े भाई के घर जाकर अपनी राम-कहानी कह सुनाई। सब कुछ सुनने के बाद बड़े भाई ने कहा- “भाई ! परसों मेरी बरस-गाँठ है। इसलिए तुम बहू और बच्चों को लेकर हमारे घर आ जाना ।"

इसे तरह उसने बड़े प्रेम से भाई को बुलाया । छोटा भाई खुश होता हुआ घर गया और अपनी स्त्री से सारी कहानी कह सुनाई। स्त्री बहुत खुश हुई। उन दोनों ने सोचा-"बरस-गाँठ के दिन भाई ज़रूर उन्हें एसी रकम देंगे जिससे उनकी सारी ग़रीबी दूर हो जाएगी।” यह सोच कर दोनों फूले न समाए।

तीसरे दिन छोटा भाई अपनी पत्नी और बाल-बच्चों को साथ लेकर हवाई महल बनाता अपने बड़े भाई के घर पहुँचा। यहाँ जाकर उसने देखा कि भाई का सारा महल चहल-पहल से भरा हुआ है। दूर-दूर से लख़पति, करोड़पति सब आए हुए थे। वे सब लम्बी कतारों में कुर्सियों पर बैठे हुए थे। उनके आगे टेबुलों पर खाने-पीने की चीज़ें क़रीनें से सजाई हुई थी। वे लोग बड़ी देर से खा-पी रहे थे। सबके पेट भर गए थे। तोन्दें मशक की तरह फूल रही थीं। डकार पर डकार आ रही थी। चेहरों पर सुरखी दौड़ रही थी। लेकिन उसके बड़े भाई अब भी घूम-फिर कर उनसे और ज़रा खाने का आग्रह कर रहे थे। वहाँ से हजारों आदमी खा-पीकर पान चबाते हुए उठे। नौकर-चाकर अब भी फुर्ती से इधर-उधर दौड़ रहे थे। लेकिन किसी ने छोटे भाई की तरफ़ आँख

उठा कर भी न देखा। वह अपने बाल बच्चों सहित आँखें फाड़-फाड़ कर खाने की चीज़ों की तरफ़ देखता रहा। लेकिन किसी ने उसे खाने के लिए नहीं बुलाया ।

दावत खतम होते ही कुछ लोगों ने उठ कर उसके बड़े भाई की उदारता और सज्जनता का बखान किया । कवियों ने उनकी प्रशंसा में कविताएँ पढ़ीं । उन्हें शिवि और दधीचि से भी बड़ा दानी बताया ।

थोड़ी ही देर में दावत ख़तम हो गई। सब लोग बडे भाई से विदा लेकर धीरे-धीरे अपने घर चले गए। लेकिन तब भी बड़े भाई ने अपने भाई से न बात ही की और न कुछ ही पूछी। वह अनदेखी करते हुए अन्दर चला गया। जैसे उसे अपने भाई के सपरिवार आने की कोई ख़बर ही न हो।

इस तरह अपमानित होने के बाद अब छोटे भाई का वहाँ रहने का मन न हुआ। वह बीबी-बच्चों के साथ भूखा-प्यासा, लाज की गठरी सर पर लाद कर घर लौट चला। राह में

वह अपने भाई की प्रशंसा में पढ़ी हुई एक कविता गुनगुनाते हुए चला। अचानक उसे ऐसा मालूम हुआ,
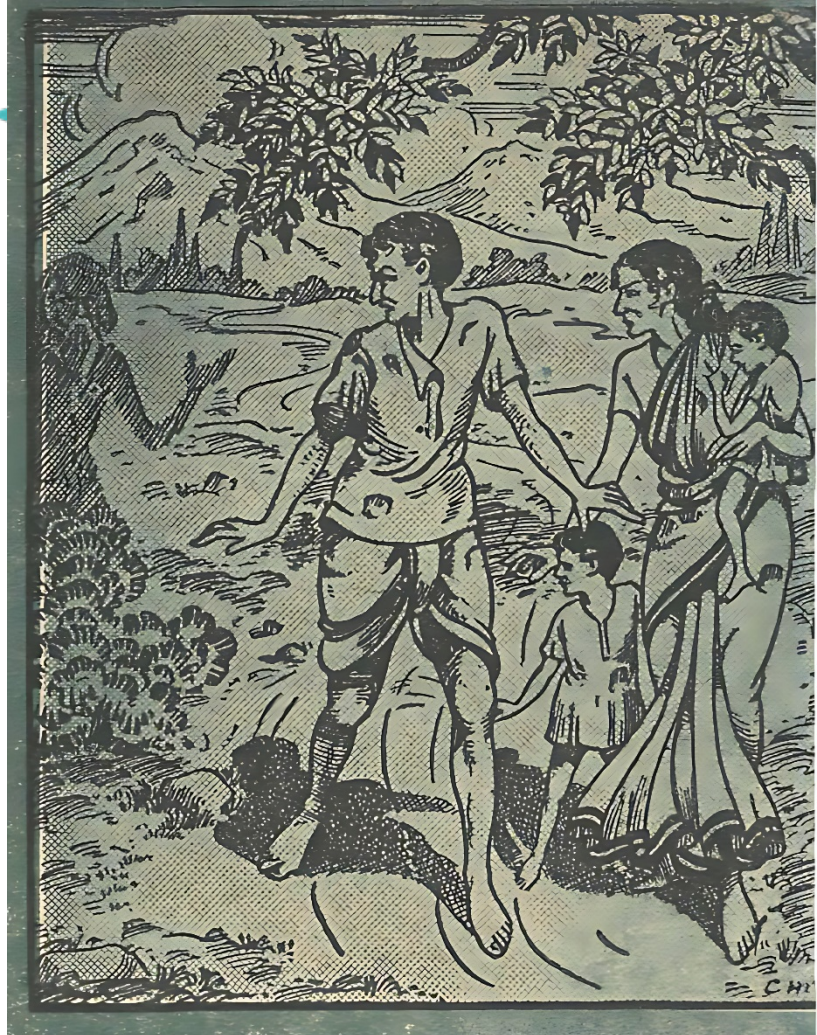
मानों और कोई उसके साथ गला मिला कर वही कविता गुनगुना रहा है। उसने अपनी पत्नी से पूछा-"क्या ! तुम भी वही कविता गुनगुना रही हो ?"

"कहाँ ? मैंने तो नहीं गुनगुनाया ! अब मुझमें गाने का उल्लास नहीं रह गया है।" उसकी पत्नी ने उसे जवाब दिया। इतने में पीछे से किसी ने कहा-"तुम्हारे साथ गला मिला कर मैंने गाया था। मेरा नाम दरिद्र-नारायेण है। मैं बहुत दिनों से देख रहा था कि मुझसे दोस्ती करने वाला

कौन मिलता है ? आज मेरे भाग्य से तुम मिल गए। अब मैं तुम्हारा पिण्ड छोड़ने बाला नहीं। तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो।"

दूसरे ही क्षण में एक बौना उसके सामने आ खड़ा हुआ। इस तरह छोटे भाई के साथ-साथ दरिद्र-नारायण भी उनके घर पहुँचा।

घर पहुँचने के बाद उसने छोटे भाई से कहा-"क्यों इस तरह मनहूस सूरत बनाए हो ? चलो मेरे साथ ! तुम्हें ऐसी शराब पिठाऊँगा कि सारे झगड़े-झञ्झट भूल जाओगे।"

"मेरे पास पैसा नहीं है।" छोटे भाई ने कहा।

"पैसा क्यों नहीं है? तुम्हारे बदन पर कुरता जो है ? चलो, उसे बेच-बाच कर मौज उड़ाएँ।" यह कह कर बौना उसे अपने साथ ले गया।

इस तरह दरिद्र-नारायण की सङ्गत में छोटे भाई ने रोज़ एक-एक करके घर की सारी चीजें बेच डाली । रुपया-पैसा गल कर शराब में ढलने लगा। आख़िर उसकी पत्नी

के बदन की दो फटी हुई साड़ियों के सिवा घर में कुछ न बच रहा।

तब बौने की सलाह से छोटे भाई ने पड़ोस के एक अमीर आदमी के पास जाकर कहा-"आप अपनी बैल-गाड़ी मुझे एक दिन के लिए दे दीजिए। एक ज़रूरी काम आ पड़ा है। मैं परसों अपने काम से लौट कर उसे आपके पास पहुँचा दूँगा।"

अमीर ने उसे अपनी बैल-गाड़ी दे दी। ज्यों ही वह गाड़ी ले आया त्यों ही बौने ने उससे पूछा-"भाई! यहाँ से पाँच कोस की दूरी पर पूरब की ओर ताड़ों के झुरमुट

के पास एक बड़ी काली चट्टान है; जानते हो न ?"

"हाँ! हाँ! क्यों नहीं जानता? उस चट्टान को तो आस-पड़ोस के सभी गाँव-वाले जानते हैं।" उसने जवाब दिया। "तो ले चलो गाड़ी तुरन्त वहाँ !" बौने ने कहा।

दोनों तुरन्त गाड़ी पर वहाँ गए। बौने के कहने से छोटे भाई ने उस काली चट्टान को हटाया तो उसके नीचे एक सुरङ्ग दिखाई दी। उस सुरङ्ग में थोड़ी दूर जाने पर उसे सोने की ईंटें, चमकते हुए हीरे-जवाहरात आदि ढेर-के-ढेर दिखाई दिए। बौने की ही सलाह से उसने सारा घन ढोकर गाड़ी पर लादना शुरू किया। लेकिन वह सब धन ढोकर बाहर ले जाना भी कोई आसान काम न था। देर होने लगी। उधर बौना जल्दी कर रहा था कि-"चलो, जल्दी करो ! शराब-खाना बन्द करने का समय हो रहा है।"

आख़िर उसकी जिद्द से तङ्ग आकर छोटे भाई ने सोचा-" इसी दुष्ट ने मुझे शराब की लत लगा दी है। अगर मैं अब भी नहीं चेता तो पीछे पछताने से कुछ भी फ़ायदा न होगा। पहले मुझे किसी तरह इस बौना से पिण्ड छुड़ा लेना चाहिए।
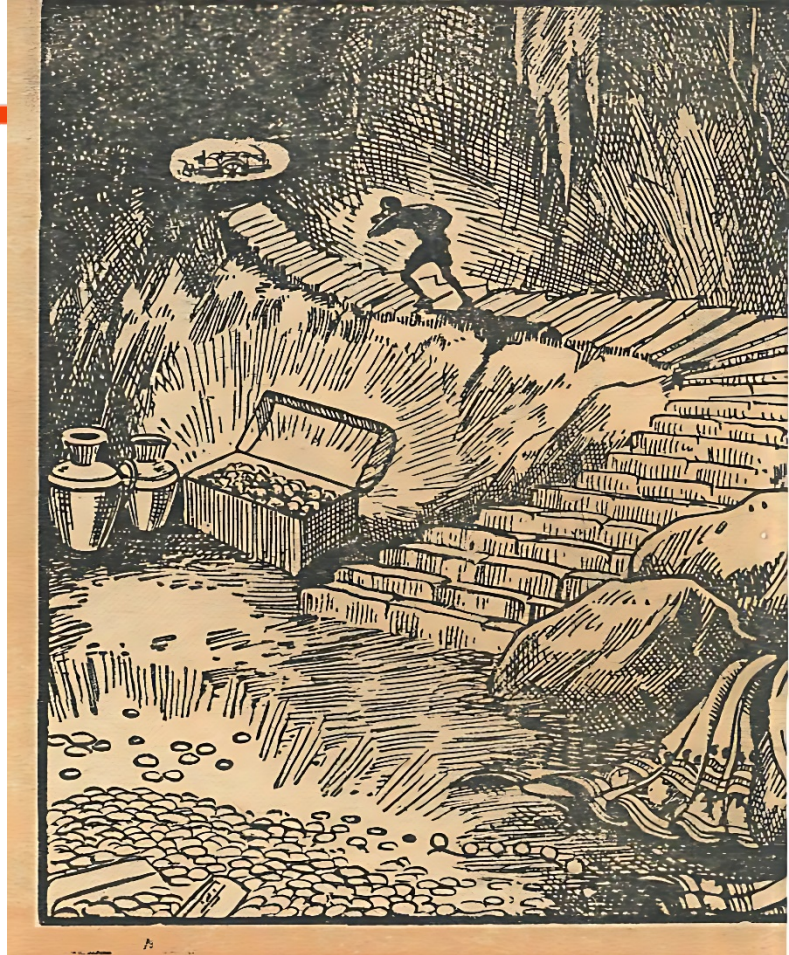
यह सोच कर उसने एक उपाय ढूँढ निकाला और बौने से कहा--" भाई! मैं तो जहाँ तक हो सका सब कुछ ढोकर बाहर ले आया। लेकिन गाड़ी पर अब भी थोड़ी जगह बच रही है। अच्छा हो, तुम सुरङ्ग में उतर कर एक बार चारों ओर देखो कि कहीं कुछ छूट तो नहीं गया है!"

यह सुनते ही बौना सुरङ्ग में उतरा । तुरन्त छोटे भाई ने अपना सारा ज़ोर लगा कर उस काली चट्टान को लुढ़काया और सुरङ्ग का मुँह बन्द कर दिया। बौना लाचार होकर उस सुरङ्ग में कैद हो गया।
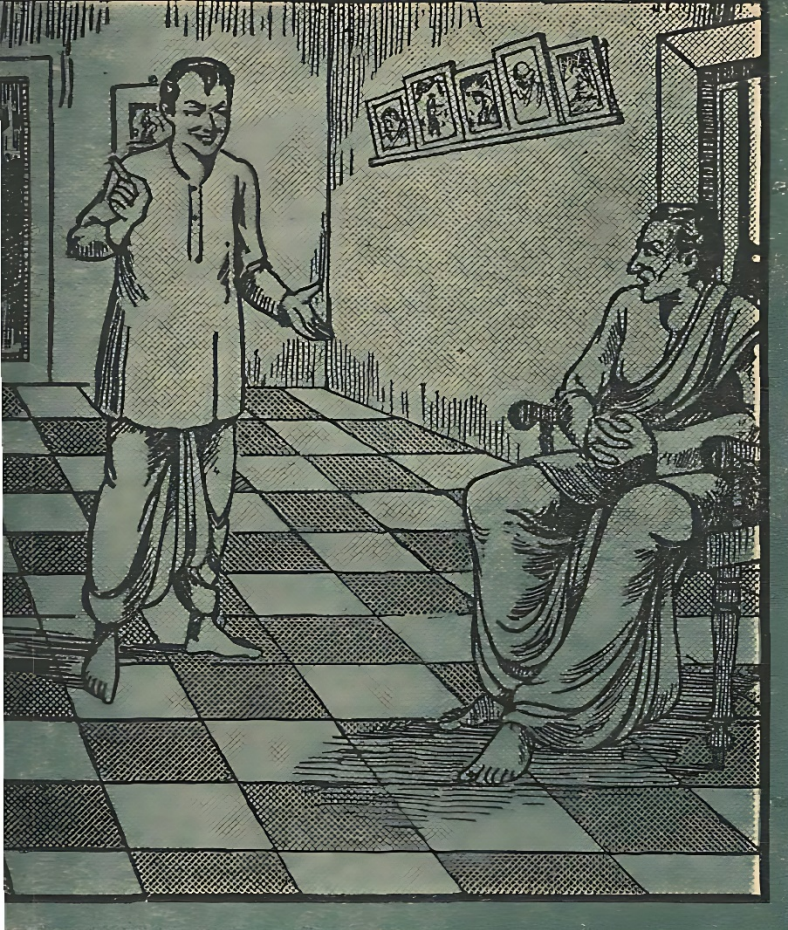
अब छोटा भाई सोने की ईंटों और हीरे-जवाहरात से भरी गाड़ी लेकर घर लौटा। घर पहुँचते ही पहले उसने सब चीजें उतार कर गाड़ी उसके मालिक को लौटा दी। फिर उसने उस धन से एक सुन्दर महल बनवा लिया। पत्नी के लिए तरह-तरह के गहने बनवाए। अब वह बड़े ठाट-बाट से अपने बड़े भाई से भी ज्यादा शान से जिन्दगी बिताने लगा।

कुछ दिनों बाद छोटे भाई की बरस-गाँठ का दिन आया। पहले तो उसके पास कभी पेट भर खाने के लिए भी न रहता था। इसलिए वह बरस-गाँठ क्या मनाता ? लेकिन इस बार उसे किस चीज की कमी थी ? इसलिए उसके मन में भी इच्छा पैदा हुई कि वह भी अपने बड़े भाई की ही तरह घूम-धाम से अपनी बरस-गाँठ मनाए।

दूसरे दिन जाकर वह अपने बड़े भाई को सपरिवार आने का निमन्त्रण दे आया।

बरस-गाँठ के दिन उसका बड़ा भाई सपरिवार आया। जब उसने अपने भाई के घर की राह पूछी तो लोगों ने उसे ले जाकर एक आलीशान-महल के सामने खड़ा कर दिया। अपने भाई का ठाट-बाट देखते ही बड़े भाई के पेट में खलबली मच गई कि यह अचानक इतना बड़ा अमीर केसे बन गया !

उस दिन छोटे भाई के घर उस देश के राजे-महाराजे, अमीर-उमराव सभी दावत खाने आए। उन सबने जाते वक्त छोटे भाई की बड़ाई की और कहा कि ऐसी दावत उन्होंने अपनी जिन्दगी में कभी न खाई थी। बस, छोटे भाई का ही नाम सब की जबान पर था। यह सब देख-सुन कर बड़े भाई का मन ईर्ष्या से जलने लगा।

उसने साँझ तक किसी तरह सब्र किया और जब सभी पाहुने अपने अपने घर चले

गए तो उसने बड़ी उतावली से जाकर आपने भाई से पूछा-"भाई ! तुमने यह सब दौलत कैसे पाई ?" तब छोटे भाई ने अपनी सारी कहानी कह सुनाई । दरिद्र-नारायण से उसका परिचय होना, ताड़ों के पास जाकर काली चट्टान हटाना, सुरङ्ग में धन मिलना आदि बातों में से उसने कुछ भी न छिपाया। यह सब सुनते ही बड़े भाई ने सोचा-"अच्छा बच्चू ! अब मुझे सारा हाल मालूम हो गया। अब मैं देखूँगा कि तुम कितने दिन इस तरह अमीर बने रहते हो।" यह सोच कर वह भाई से बिदा हो कर घर चला गया।

दूसरे दिन बड़ा भाई तड़के उठा और हाथ-मुँह घोकर दौड़ता-दौड़ता ताड़ों के झुरमुट की तरफ़ चढा। उसके मन में एक तो यह आशा थी कि अब भी उस सुरङ्ग में बहुत सा धन होगा। दूसरे, वह बौने को कैद से छुड़ा कर अपने भाई से बदला लेना चहता था। वहाँ जाकर उसने उस काली चट्टान को हटाने की कोशिश की। लेकिन चट्टान बहुत भारी थी | वह टस-से-मस न हुई।

दूसरी बार उसने पूरी ताक़त लगा कर चट्टान को थोड़ा सा हटाया। बौने ने, जो अन्दर बहुत झल्लाया बैठा हुआ था तुरन्त एक हाथ बाहर पसार कर उसका टेंटुआ पकड़ लिया।

अब बड़े भाई को लेने के देने पड़ गए। जब दम घुटने लगा तो उसने चिल्ला कर कहा-"अरे भाई ! तुम नाहक मेरी जान क्यों लेते हो ? मैं तो तुम्हें इस कैद से छुड़ाने आया था। तुम्हें इस सुरङ्ग में मैंने नहीं, मेरे भाई ने बन्द कर दिया था। तुम शायद भ्रम में पड़ गये हो ! मेरी जान जा रही है। मुझे छोड़ दो !"

लेकिन बौना काहे को सुनता? उसने कहा -"धोखेबाज कहीं का ! एक बार चकमा देकर चला गया तो क्या समझ

लिया कि हर बार इसी तरह आँखों में धूल झोंक सकेगा ?क्यों अब मालूम हो गया न आटे दाल का भाव ? ”

तब बड़े भाई ने गिड़गिड़ा कर कहा-"दरिद्र-नारायण ! मुझे छोड़ दो ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। मैंने तुमको घोखा नहीं दिया था ! मैं तो तुम्हें इस कैद से छुड़ाने आया था !” आख़िर इस तरह बहुत बिनती-चिरौरी केरने के बाद बौने ने उसे छोड़ कर कहा-“अच्छा ! तो अब मुझे अपने कन्धे पर चढ़ा कर घर ले चलो !” बेचारा बड़ा भाई क्या करता ? उसे अपने कन्धे पर ढोता हुआ घर ले गया।

दरिद्र-नारायण ने ज्यों ही उसके घर में कदम रखा त्यों ही उसके प्रभाव से बड़े भाई की सारी दौलत जहाँ-की-तहाँ ग़ायब हो गई। वह सब तरह की बुरी लतों का शिकार हो गया। आख़िर भीख माँगने तक की नौबत आ पहुँची। फिर भी उससे पिण्ड छुड़ाने का कोई रास्ता न दीख पड़ा । आखिर बड़े भाई ने एक दिन किसी बहाने से बौने को एक सन्दूक में उतार दिया और तुरन्त ढकना बन्द करके ताला भी लगा दिया। फिर वह उस सन्दूक को ढोकर बहुत दूर एक नदी में फेंक आया। वह सन्दूक नदी में बहता हुआ आख़िर समुन्दर में जाकर मिल गया। अगर उस सन्दूक को उसी तरह समुन्दर में रहने दिया जाता तो क्या ही अच्छा होता ! दरिद्र-नारायण समुन्दर में आराम करते रहते और संसार चैन की बंशी बजाता। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो पाया। किसी लोभीराम ने उसे जल में तैरते हुए देख लिया और बाहर लाकर खोल डाला । बस, दरिद्र-नारायण ने फिर प्रथ्वी पर विहार करना शुरू किया। तब से वे आज तक किसी न किसी के सर पर सवार हो ही जाते हैं।

एक जङ्गल था। उस जङ्गल में एक बड़ा सरोवर और उसके किनारे एक बड़ा पुराना बरगद का पेड़ था। एक दिन एक कोढ़ी उस राह से निकला और अपनी थकान मिटाने के ढिए उस बरगद के पेड़ की छाँह में बैठ गया। वह बैठे-बेठे सरोपर की ओर देख रहा था कि इतने में बरगद की एक पत्ती झड़ कर सरोवर के पानी में गिरी। जल छूते ही वह पत्ती एक मछली के रूप में बदल कर पानी में डूब गई।

यह देख कर वह कोढ़ी अचरज में पड़ गया। इतने में एक और पत्ती झड़ कर किनारे की धूल में गिरी। तुरन्त वह पत्ती एक चिड़िया बन कर फुर्र से आसमान में उड़ गई। यह देख कर कोढ़ी का अचरज और भी बढ़ गया।

इतने में एक और पत्ती झड़ी । इस बार बह पत्ती आधी पानी में और आधी कीचड़ में गिरी। जो हिस्सा पानी में गिरा था वह मछली बन गया और कीचड़ में का हिस्सा एक चिड़िया। मछढी वाला हिस्सा पानी में डूबने की कोशिश कर रहा था तो पञ्छी वाला आसमान में उड़ने की। कोढ़ी यह देख कर खड़ा हो गया और देखने लगा कि अब क्या होता है?

इतने में वह पत्ती अचानक एक भूत बन गई। उस भूत के सर के बाल बबूल के काँटों की तरइ खड़े थे। उसकी आँखें अङ्गारों की तरह दहक रही थी। उसकी तोन्द गजों बाहर निकली हुई थी। उसके भयङ्कर दाँत चमक रहे थे। उस भूत ने थर-थर -काँपने वाले कोढ़ी को उठा कर अपने कन्धे पर रख लिया और दौड़ पड़ा ।

दौड़ते-दौड़ते वह बहुत दूर निकल गया और एक गुफ़ा के नज़दीक जाकर रुका। उस गुफ़ा के द्वार पर एक बड़ी भारी चट्टान

हरिकिशन

पड़ी थी। भूत उस चट्टान को आसानी से धकेल कर अन्दर घुस गया। भीतर जाने के बाद उसने कोढ़ी को कन्धे पर से नीचे पटक दिया और पहले के लोगों को फिर से एक बार गिन लिया। कोढ़ी के साथ कुल एक सौ आदमी थे।

भूत की खुशी का ठिकाना न रहा। वह उछलने-कूदने और नाचने लगा। बात यह थी कि भूत सौ आदमियों को जमा करके एक बार खा जाता था। एक-एक करके खाने से उसका मन बिलकुल न भरता था। इसलिए सौ तक गिनने के बाद वह सबको एक ही बार चट कर जाता और उस पोखर का पानी पीकर मस्त हो जाता। फिर वह कुछ दिन तक उस गुफ़ा में चैन से खर्राटे लेता रहता।

इसलिए आज कोढ़ी के साथ सौ आदमी पूरे होते देख उसे बहुत ख़ुशी हुई। उसने सोचा-"चलो ! पहले नहा-धो लें। फिर आराम से बैठ कर पेट-पूजा करेंगे।" यह सोच कर वह नहाने चला गया। भूत के जाते ही वहाँ जितने लोग थे सबने कोढ़ी को घेर लिया और रोते हुए कहा-"भाई ! आज हमारी आयु पूरी हो गई। तुम हमारी माला के सुमेर हो !" "तो क्या इस भूत को मार डालने का कोई उपाय नहीं है?" कोढ़ी ने पूछा। "इस भूत को तो शिवजी जैसे कोई देवता ही मार सकते हैं। मनुष्य इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" उन्होंने जवाब दिया। "मैं शिवजी की प्रार्थना तो कर सकता हूँ। लेकिन मुझे विश्वास नहीं कि मेरी प्रार्थना पर वे कोई ध्यान देंगे। वे मुझसे बहुत नाराज़ हैं।" उस कोढ़ी ने कहा।

"क्यों? तुमसे वे नाराज क्यों हैं" उनमें से किसी ने पूछा। कोढ़ी ने कहा- "अगर मैं अभी वह सब कहानी सुनाने लगूँ, तो भूत आ जाएगा और हम सबको हड़प जाएगा। इसलिए आओ, पहले भूत को

मारने का उपाय सोचें। उसके मर जाने के बाद तुम जितनी चाहोगे उतनी कहानियाँ सुनाता रहूँगा।"

यह कह कर उस कोढ़ी ने आँखें बन्द करके छिवजी के पुत्र श्री कार्तिकेय का ध्यान किया। ध्यान करते ही छः मुँह वाले वे देवता आकाश से उतरे और उस कोढ़ी के पास जाकर बोले-"तुम क्या चाहते हो ?"

इतने में नहा-घोकर भूत भी वापस आ गया। कोढ़ी ने भूत की ओर उँगली उठा कर कहा- "भगवान ! इस भयङ्कर भूत से हमारी रक्षा कीजिए।"

यह सुनते ही कार्तिकेय ने तलवार के एक ही वार से उस आदम-ख़ोर भूत को ख़तम कर दिया। भूत को मार कर षड़ानन ने उस कोढ़ी से कहा- "सूरत-शकल से तुम बड़े भारी पण्डित और कवि मालूम होते हो ! तुम को यह कोढ़ कहाँ से आ गया?" तब कोढी ने जवाब दिया-"भगवान! आपके पिता के शाप से ही मेरी यह हालत हुई !" यह सुनते ही सबने एक-कण्ठ से कहा-"अच्छा ! यह भूत तो मर गया। अब हमें अपनी कहानी सुनाओ न !" तब भगवान कार्तिक के सामने कोढ़ी अपनी कहानी यों सुनाने लगा-

"मैं दक्षिण भरत के पाण्ड्य-देश का रहने वाला हूँ। मेरा नाम नत्कीर है। पाण्ड्य देश की राजधानी मदुरा है। मदुरा के राज-दरबार में एक रत्नों से जड़ा हुआ सिंहासन है। कहा जाता है कि ऋषि अगस्त्य ने वह सिंहासन पाण्ड्य वेश के राजाओं को उस देश के सर्वश्रेष्ठ कवियों के बैठने के लिए दिया। वह सिंहासन देखने में बहुत छोटा है। लेकिन उसमें विशेषता यह है कि श्रेष्ठ-कवियों के आने से
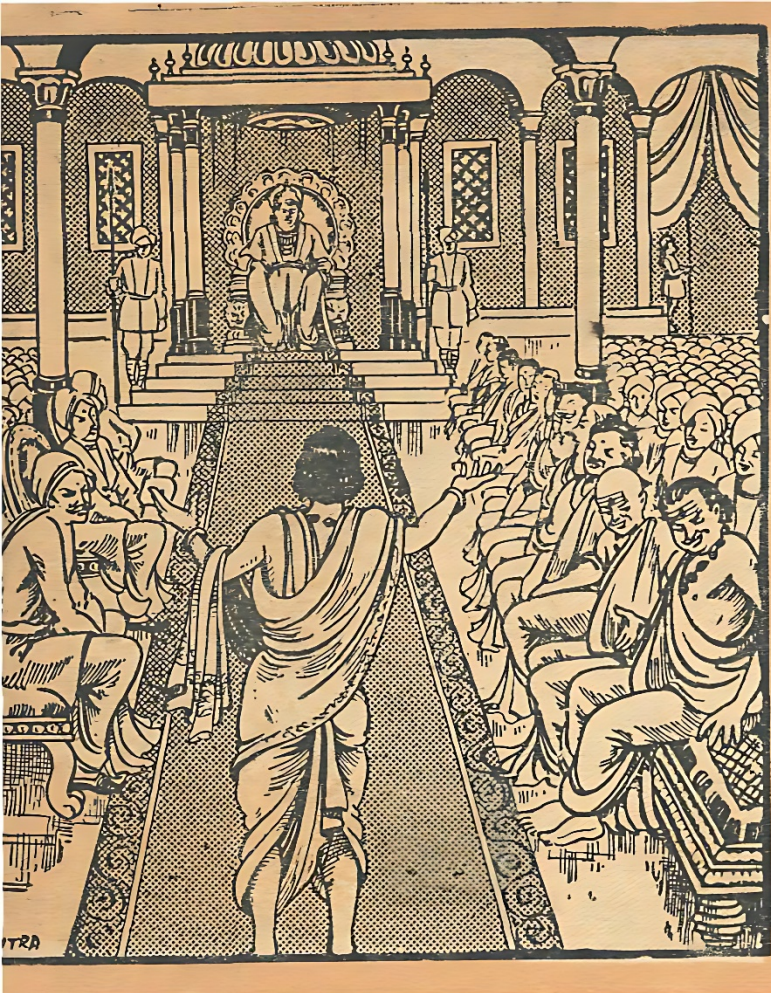
वह अपने आप बड़ा बन जाता है और सब को बैठने की जगह दे देता है।

मैं जब पाण्ड्य-राज के दरबार में आश्रय लेने गया तब तक ग्यारह महाकवि उस सिंहासन पर बैठ चुके थे। मैंने भी अपनी कविता से सब को मुग्ध कर दिया। इसलिए उस सिंहासन ने मुझे भी बैठने की जगह दे दी। इस तरह उस पर बैठने बाले हम बारह कवि हो गए।

मेरे बाद भी बहुत से कवियों ने आकर उस दरबार में अपनी कविता सुनाई। लेकिन उस सिंहासन ने उनमें से किसी को स्थान न दिया। तो भी राजा उन कवियों को खाली हाथ लौटाना नहीं चाहता था। इसलिए हम बारहों महा-कवियों से उनकी परीक्षा करा कर हमारी सलाह के अनुसार उन्हें पुरस्कार दिया करता था। लेकिन धीरे-धीरे नए कवियों का उस दरबार में आना बन्द हो गया। क्योंकि वे सभी हमसे डरते थे। इस तरह हम बारहों का घमण्ड धीरे-धीरे बहुत बढ़ गया। ख़ास कर मेरी नज़र तो ज़मीन पर पड़ती ही न थी।

एक दिन एक कवि ने उस दरबार में आकर एक श्लोक पढ़ा । उस श्लोक का भावार्थ यह था कि "एक स्त्री के केशों से एक तरह की स्वाभाविक सुगन्ध निकलती है।"

तब मैंने उठ कर उस बेचारे की खिल्ली उड़ाते हुए कहा-"अरे कविजी ! यह कहाँ की कविता है? कहीं स्त्री के केशों में भी स्वाभाविक सुगन्ध होती है ? शायद आप को भ्रम हो गया होगा या नहीं तो उसने कोई सुगन्धित तेल ढगा लिया होगा !" तब वह कवि बेचारा शरम से सर झुका कर बाहर ला गया ।

वहाँ सब लोग मेरी तारीफ़ करने लगे कि "वाह! वाह! केसा लथेड़ा कविजी को?" इतने में उसी कवि का हाथ पकड़

कर और एक व्यक्ति बड़े क्रोध से दरबार में आया और गरज कर बोला-“यह मेरा प्यारा भक्त है। बेचारा गरीबी से तङ्ग आ गया। इसलिए मैंने इसे एक श्लोक लिख कर दिया और कहा कि जाओ; राज-दरबार में इसे पढ़ कर ईनाम ले लो। लेकिन मैंने सुना कि

दरबार में आकर श्लोक पढ़ने पर उसमें किसी ने ग़लती दिखाई थी। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि वह पण्डित कौन हैं ?” तब मैंने अकड़ते हुए उठ खड़े होकर कहा-"मैंने ही उस श्लोक पर आक्षेप किया था। क्या यह सच है कि स्त्री के केशों में भी कोई स्वाभाविक सुगन्ध होती है?”

तब उस व्यक्ति ने जवाब दिया-“हाँ, एक स्त्री के केशों में से ऐसी स्वाभाविक सुगन्घ आती है। शायद तुम नहीं जानते हो। मेरी खी पार्वती के केशों में ऐसी स्वाभाविक सुगन्ध है। जिस विषय में तुम्हारा प्रवेश नहीं, उसमें दखल देना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं । उस व्यक्ति ने यह कहते हुए अपना शिव-स्वरूप दिखाया।

दरबार में हलचल मच गई। सब लोग "महादेव ! महादेव !” कहते हुए उठ खड़े हुए। मेरे साथी ग्यारहों

कवि सिंहासन से उठ कर “वन्दे शम्मुम् उमापतिम्" कह कर शिवजी का स्तोत्र करने लगे। लेकिन मैं कुछ भी बिचलित न हुआ। जब वाद-विवाद उठ खड़ा हो जाए तो हमें अपने पक्ष का समर्थन करना चाहिए। विपक्ष में चाहे देवता ही क्यों न हों, घबरा नहीं जाना चाहिए। इसढिए मैं अपनी जिद पर अड़ा रहा। तब शिवजी को क्रोध आ गया और उन्होंने मुझे शाप दे दिया- "तुमने दूसरों पर आक्षेप किया। इसढिए तुम कोढ़ी बन जाओ ।” अब तो मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। मैंने उनके पैरों पर पड़ कर क्षमा माँगी। तब अशुतोष शङ्कर ने मुझ

पर तरस खा कर कहा-"अच्छा ! जाओ ! जब तुम कैलास पहाड़ के दर्शन कर लोगे तो यह शाप छूट जाएगा। लेकिन एक बात याद रखना । कभी किसी की कविता में ग़लतियाँ न हूँढना । जो कुछ अच्छाई हो उसी की प्रशंसा करना ।" इस तरह मेरा गर्व चूर-चूर करके शिवजी अन्तर्धान हो गए। मैं वहाँ से तुरन्त कैलास के दर्शन करने चला। राह में इस भूत के पञ्जे में फैंस गया।" यह कह कर उस कोढ़ी ने अपनी कहानी ख़तम की। तब पार्वती-पुत्र ने प्रसन्न होकर कहा-"हे नत्कीर ! तुमने बहुत कष्ट उठाए। मैं तुम्हें एक वर देना चाहता हूँ । तुम जो चाहो माँग लो।"

तब नत्कीर ने कहा-"भगवान ! मैं जल्द-से-जल्द इस कोढ़ से छूट जाना चाहता हूँ।कैलाश देखे बिना तो मेरा शाप नहीं छूट सकता। वह यहाँ से बहुत दूर है और मैं अपनी बीमरी की वजह से जल्दी जल्दी चल भी नहीं सकता। इसलिए आप ऐसा वर दीजिए जिससे मुझे आसानी से कैलास के दर्शन हो जाएँ।" तब कार्तिकेय ने कहा-"कैलास तो शिवजी का निवास है। इसलिए जहाँ शिवजी हों वहीं कैलास है। आजकल शिवजी दक्षिण के 'काल्हस्ती' में रहते हैं। वह पुण्य-क्षेत्र दक्षिण का कैलास भी कहा जाता है। तुम मेरे मयूर पर बैठ जाओ। मैं तुम्हें 'काल्हस्ती' में उतार दूँगा । पुण्य-क्षेत्र में पहुँचते ही तुम्हारा कोढ दूर हो जायगा।"

तब नत्कीर ने उस गुफा में जितने लोग थे सब से बिदा ली। कोढ़ी को लेकर कार्तिक का मोर वहाँ से उड़ा और कालहस्ती पहुँचा। कालहस्ती के दर्शन करते ही उसका कोढ़ काफूर हो गया। भला-चङ्गा होकर उसने अपने रचे श्लोकों से शिव की स्तुति की। उसके ऊपर भोले-बाबा परम प्रसन्न हुए और नत्कीर की कहानी जगत में विख्यात हो गई।

जब ब्रम्हा ने पहले-पहल यह संसार रचा और सब तरह के पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आदि बनाए तो उनके कार्य से उनमें से कुछ को बड़ा असन्तोष हुआ। क्योंकि वे जिस तरह का डील-डौल चाहते थे वैसा ब्रह्मा ने उन्हें नहीं दिया था।

पहले भगवान ने ऊँट के लम्बी-लम्बी टाँगें और छोटी सी गरदन दी थी । इसलिए उसे चरने और पानी पीने में बड़ी मुश्किल होती थी। आख़िर तङ्ग आकर ऊँट ने एक गुफ़ा में जाकर आसन जमाया और आँखें मूँद कर घोर तप करने ढगा। आख़िर बूढ़े ब्रह्मा का दिल पिघला। एक दिन वे उसके सामने आ खड़े हुए और बोले-"वत्स ! तुम्हारे तप से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । बोलो, तुम क्या वरदान चाहते हो?" दण्डवत करके ऊँट बोला-"भगवान ! आप सर्वान्तर्यामी हैं। क्या आप मेरे मन की बात नहीं जानते हैं ? तो भी सुनिए। मैं अपनी इच्छा कहता हूँ। आपने मेरी देह के सभी अङ्ग बहुत सुडौल बनाए हैं । लेकिन जैसी टाँगें लम्बी हैं, वैसी गरदन भी होती तो मुझे इतनी तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। कृपा कर मेरी गर्दन भी लम्बी कर दीजिए।"

"बहुत अच्छा ! तुम्हारी गरदन एक कोस लम्बी हो जाएगी।" वर देकर बूढ़े बाबा अन्तर्धान हो गए। उनके जाते ही ऊँट की गरदन बढ़ने लगी और यहाँ तक बढ़ी कि एक कोस दूर जङ्गल में पहुँच गई और तब जाकर रुकी ।

अब ऊँट महराज अपनी गुफ़ा में बैठे बैठे ही एक कोस तक का जङ्गल साफ़ करने लग गए। दूर तक चारों ओर के सुन्दर पेड़ों की फल-पत्तियाँ सब चट कर लेते और

झरनों के मीठे पानी से अपनी प्यास बुझा कर सो जाते। इधर-उधर घूमने की तकलीफ से बच कर उनके दिन बहुत मजे में बीतने लगे ।

अगर ऊँट इसी तरह सुख से अपने दिन बिताता जाता तो कोई बात न थी। लेकिन ब्रह्मा का वरदान पाकर उसके घमण्ड का ठिकाना न रहा। उसे अब तरह-तरह की दरारतें सूझने ठगीं। माँद में शेर को सोता देख वह उसके केसर पकड़ कर खींच लेता। बाघिन के पास सोए बच्चों को उठा कर कहीं दूर रख आता । चौकड़ी भरते हिरनों की गरदन पकड़ कर उठा ढेता। डालों पर उछलते बन्दरों की पूँछ पकड़ कर नचाता ! इस तरह कुछ ही दिनों में उसने सारे जङ्गल में खलबली मचा दी।

तब सभी जानवर मिल कर ब्रह्मा के पास गए और रो-रो कर अपना दुखड़ा कहने लगे। ब्रह्मा को उन पर तरस आ गया। वे बोले-"अच्छा ! जाओ ! मैं इसका कोई उपाय करूँगा ।" दूसरे दिन जङ्गल में बड़े ज़ोर का पानी बरसा। उँट का शरीर तो गुफ़ा में था। लेकिन उसकी गर्दन तो एक कोस तक फैली थी। वह उसे समेटता भी तो कैसे !

कोई उपाय न देख आख़िर उसने अपना सिर एक झाड़ी के अन्दर डाल दिया और चुपचाप लेटा रहा। इतने में क्या हुआ कि एक सियार उस झाड़ी के पास से निकला।

ऊँट की गरदन देख उसने समझा कि कोई जानवर मरा पड़ा है। उसने अपने तेज़ दाँतों से उसकी गरदन को नोचना शुरू किया। ऊँट बिलबिठाते हुए अपनी घायल गरदन ढेकर फिर बूढ़े बाबा के पास पहुँचा । बहुत गिड़-गिड़ाने पर ब्रह्मा ने उस पर दया की और काट-छाँट कर उसकी गरदन कुछ छोटी कर दी। अब उसकी गरदन न ज्यादा लम्बी रही, न एक दम छोटी ही । तब से उसके उपद्रव कम हो गए और जङ्गल के जीव सुख से रहने ठगे। तुम उसकी जो गरदन आज देखते हो उसी समय की काट-छाँट का फल है। नहीं तो अपनी कोस-भर लम्बी गरदन से ऊँट वया-क्या न करता !

वन मानुष